भारतीय ज्ञान प्रणाली उद्गम और विकास

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

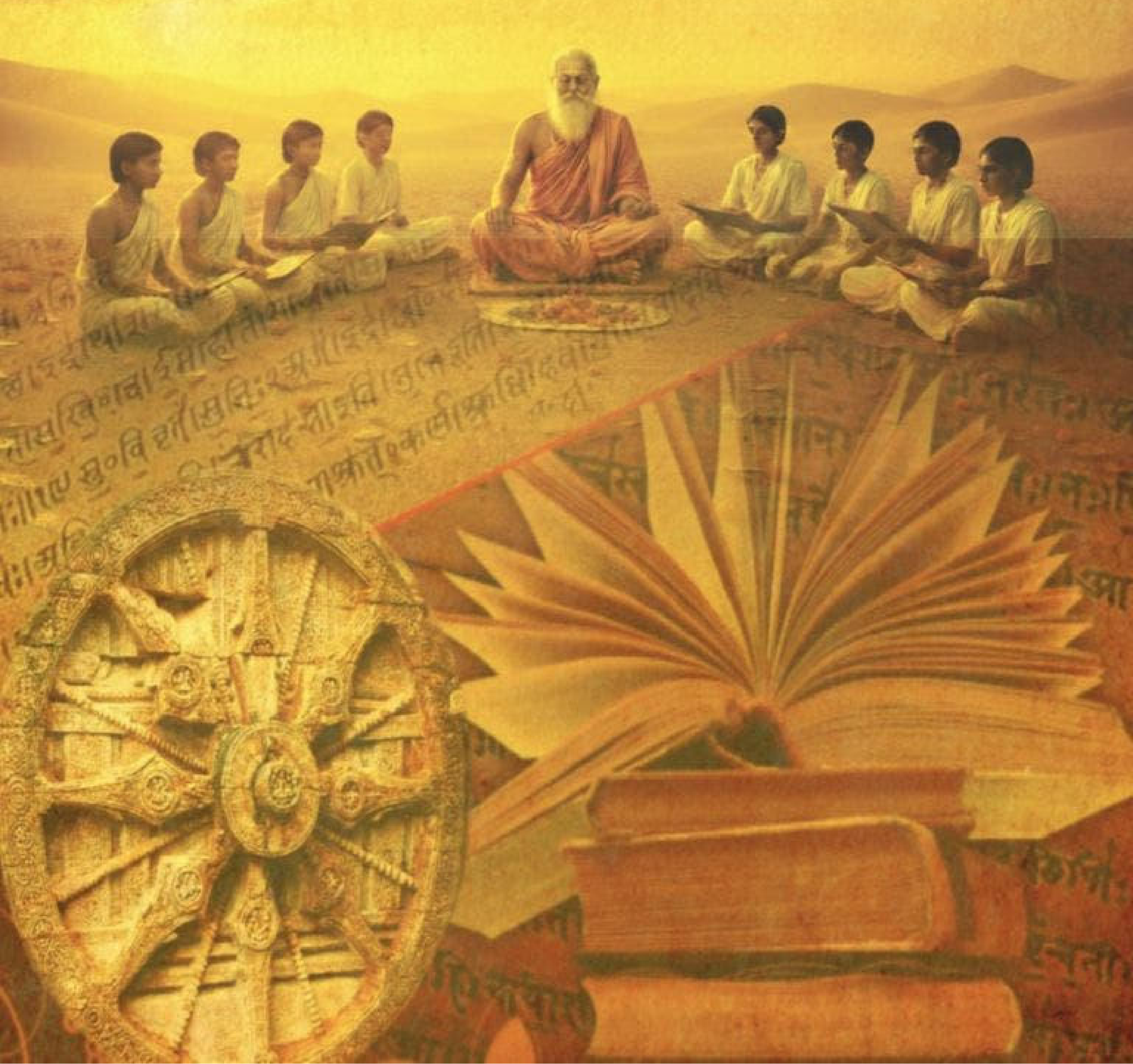

भारतीय ज्ञान प्रणाली उद्गम और विकास

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

Books n Books

51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001

प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
Books n Books
51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001
ई-मेल : bnbajmer@gmail.com
मो. 9660111549

संस्करण
प्रथम 2026

ISBN : 978-81-993854-1-2

मूल्य - 400/-

रचना - भारतीय ज्ञान प्रणाली-उद्गम और विकास

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

आवरण - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

मुद्रक
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

6

महर्षि दयानन्द और हिन्दी भाषा

रामस्वरूप गढ़वाल

सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)

हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

देश और समाज के लिए त्याग करना, विशेषकर अपनी मातृभाषा, परिवार और क्षेत्रीय मोह को छोड़ देना, अत्यन्त कठिन कार्य है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करने वाले आदि मनीषियों में महर्षि दयानन्द सरस्वती का योगदान इसी कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उनके पूर्व और समकालीन लेखकों की तो बात ही क्या, उनके बाद के अनेक विद्वान और राष्ट्रनेता भी अपनी-अपनी भाषाओं के मोह से पूरी तरह मुक्त नहीं हो सके। महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा गुजराती में लिखी, लोकमान्य तिलक ने 'गीता-रहस्य' मराठी में प्रस्तुत किया और पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथाएँ तथा अन्य प्रमुख ग्रंथ अंग्रेज़ी में लिखे।

महर्षि दयानन्द की मातृभाषा गुजराती थी और वे संस्कृत के महान विद्वान थे। इसके बावजूद उन्होंने राष्ट्र के व्यापक हित को सर्वोपरि मानते हुए अपनी मातृभाषा का मोह त्याग दिया। संस्कृत की महत्ता स्वीकार करते हुए भी उन्होंने जनसाधारण तक पहुँचने के लिए हिन्दी को अपनाया। इससे पहले महाकवि केशवदास ने भी हिन्दी का प्रयोग किया था, किंतु उन्हें इस बात का दुःख था कि उनके कुल में भाषा का समुचित ज्ञान नहीं था। इसके विपरीत महर्षि दयानन्द ने हिन्दी को प्रसन्नता और कर्तव्यभाव से अपनाया।

देश को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए एक राष्ट्रभाषा का स्वप्न महर्षि दयानन्द ने बहुत पहले देख लिया था। आर्यसमाज की स्थापना के साथ ही उन्होंने आसेतु हिमालय तक भारतवासियों को एक साझा भाषा से जोड़ने की कल्पना की और उसे साकार करने के लिए हिन्दी के प्रचार का कार्य आरम्भ किया। 'हिन्दी' शब्द में उन्हें 'हिन्दू' शब्द की वह फारसी व्याख्या झलकती प्रतीत हुई, जिसे उस समय नकारात्मक अर्थों में लिया जाता था। इसलिए यह नाम उन्हें रुचिकर नहीं लगा। उस युग में 'राष्ट्रभाषा' की संकल्पना भी स्पष्ट नहीं थी, अतः उन्होंने जनहित में इस भाषा का नाम 'आर्यभाषा' रखा।

हिन्दी उनकी मातृभाषा नहीं थी, इसलिए उन्हें इसे सीखना पड़ा। निरन्तर अभ्यास

और साधना के द्वारा उन्होंने हिन्दी पर ऐसी पकड़ बना ली कि उनके प्रसिद्ध ग्रंथ 'सत्यार्थप्रकाश' के लेखकत्व पर ही कुछ लोगों ने संदेह प्रकट कर दिया। कुछ लोगों ने यह कहना शुरू किया कि ग्रंथ की भाषा इतनी परिष्कृत और मुहावरेदार है कि यह स्वामीजी की रचना नहीं हो सकती। बाद में तो कुछ उच्च शिक्षित विद्वानों ने भी इसे अनूदित ग्रंथ मान लिया। कुछ पंडितों ने यह आरोप भी लगाया कि स्वामीजी को संस्कृत का सम्यक् ज्ञान नहीं था, इसलिए वे हिन्दी का प्रयोग करते थे।

इन सभी आलोचनाओं की महर्षि दयानन्द ने कभी परवाह नहीं की। हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानने वाले उस महान विचारक के लिए भाषा का प्रश्न व्यक्तिगत नहीं, राष्ट्रीय था। उनके लिए हिन्दी जनजागरण का माध्यम थी और देश को एकता में बाँधने का सशक्त साधन। इसी कारण महर्षि दयानन्द का हिन्दी-प्रेम केवल भाषिक आग्रह नहीं, बल्कि गहरे राष्ट्रबोध और लोककल्याण की भावना का सजीव उदाहरण है।

संस्कृत के प्रति सम्मान :

यद्यपि महर्षि दयानन्द सरस्वती ने हिन्दी की महत्ता को स्वीकार किया और उसके प्रचार-प्रसार के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया, फिर भी उन्होंने कभी संस्कृत भाषा की अवहेलना नहीं की। संस्कृत के प्रति उनके मन में गहरा सम्मान और आत्मीय लगाव था। एक बार रायबहादुर पं. सुन्दरलाल ने उनसे कहा कि संस्कृत तो एक मृत भाषा है, इसलिए उसे पढ़ने में श्रम करना व्यर्थ है। इस पर स्वामीजी ने स्पष्ट और ओजस्वी शब्दों में उत्तर दिया कि संस्कृत मृत भाषा नहीं, बल्कि देवभाषा है। वह संसार की सभी भाषाओं की जननी है और आर्य जाति के प्राचीन गौरव, सभ्यता और संस्कृति को सुरक्षित रखने वाला विशाल भंडार है। यदि संस्कृत रूपी सूर्य अस्त हो जाए, तो आर्य जाति का भविष्य सदा के लिए अंधकारमय हो जाएगा।

अपने प्रारंभिक जीवन में स्वामीजी प्रायः संस्कृत भाषा में ही व्याख्यान दिया करते थे। उनकी संस्कृत अत्यन्त सरल, सरस और मधुर होती थी। 'पताका' पत्रिका के संपादक ने उनकी संस्कृत वक्तृता के विषय में लिखा था कि संस्कृत भाषा में भी ऐसी सरल और मधुर वाणी संभव है। स्वामीजी इतनी सहज संस्कृत में बोलते थे कि जो व्यक्ति संस्कृत से बिल्कुल अनजान होता था, वह भी उनके व्याख्यान को समझ लेता था।

एक अवसर पर आरा के तत्कालीन जिला मजिस्ट्रेट ने उनसे पूछा कि वे संस्कृत में ही क्यों बोलते हैं। इस पर स्वामीजी ने उत्तर दिया कि भारतवर्ष में द्रविड़ आदि अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं, ऐसे में वे किस एक भाषा का चयन करें। इसके अतिरिक्त संस्कृत समस्त हिन्दुओं की साझा भाषा है और सभी भारतीय भाषाओं की

मूल है, इसलिए संस्कृत में बोलना ही उचित है।

फिर भी यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि संस्कृत से इतना प्रेम होने पर भी स्वामीजी ने हिन्दी को क्यों अपनाया। इसका उत्तर महात्मा नारायण स्वामी ने 'सत्यार्थप्रकाश' के संस्कृत अनुवाद की भूमिका में दिया है। उनके अनुसार स्वामीजी ने 'सत्यार्थप्रकाश' आर्यभाषा अर्थात् हिन्दी में इसलिए नहीं लिखा कि उन्हें संस्कृत प्रिय नहीं थी, बल्कि इसलिए लिखा क्योंकि उस समय संस्कृत की अपेक्षा हिन्दी को समझने वाले लोग अधिक थे। उनका उद्देश्य यह था कि उनके विचार अधिक से अधिक जनसाधारण तक पहुँचें। इस प्रकार हिन्दी का चयन संस्कृत की उपेक्षा नहीं, बल्कि लोककल्याण और व्यापक जनजागरण की भावना से प्रेरित था।

भाषा बोलने का परामर्श :

महर्षि दयानन्द स्वयं अहिन्दी भाषी थे, और उन्हें हिन्दी में बोलने की प्रेरणा एक अहिन्दी भाषी, केशवचन्द्र सेन से मिली। कलकत्ता में दोनों का नाटकीय साक्षात्कार हुआ, जिसमें स्वामीजी ने तुरंत पहचान लिया कि सामने केशवचन्द्र सेन हैं। उस समय केशवबाबू को यह दु:ख था कि स्वामीजी अंग्रेज़ी से अनभिज्ञ हैं, जबकि स्वामीजी को यह दु:ख था कि भारतवासियों के उद्धार के नेता संस्कृत से अनभिज्ञ हैं।

केशवबाबू ने स्वामीजी को संस्कृत के बजाय जनभाषा में व्याख्यान देने का परामर्श दिया, क्योंकि संस्कृत में कही गई बातें अक्सर श्रोताओं द्वारा गलत समझी जाती थीं। स्वामीजी ने सत्य को ग्रहण करने और असत्य को त्यागने के अपने स्वभाव के अनुसार यह परामर्श स्वीकार कर लिया।

एक और कारण स्वामी सत्यानन्दजी ने 'श्रीमद्दयानन्दप्रकाश' में बताया है। माघ वदी 5, 1926 को गंगा किनारे उन्होंने देखा कि एक निर्धन माँ अपने मृत बच्चे के कफन को धोकर सुखा रही थी। इस दृश्य ने उनके हृदय को द्रवित कर दिया और उन्होंने संकल्प लिया कि वे कुछ समय तक इन्हीं लोगों की भाषा में प्रचार करेंगे ताकि उनके दु:ख दूर करने का साधन प्रस्तुत कर सकें।

आर्य भाषा में ग्रन्थ रचने का उद्देश्य :

धर्म प्रवर्तक और समाज सुधारक अपने प्रचार कार्य के लिए ऐसी भाषा अपनाते हैं, जिसे सामान्य जनता आसानी से समझ सके। इसी दृष्टि से भगवान बुद्ध ने संस्कृत के स्थान पर पालि अपनाई और जैन प्रचारकों ने प्राकृत को प्राथमिकता दी। उनके लिए यह इसलिए भी आवश्यक था क्योंकि वे संस्कृत के विशेषज्ञ नहीं थे और पंडितों तक अपनी बात पहुँचाना उनके लिए सरल नहीं था।

स्वामी दयानन्द की स्थिति इसके बिल्कुल विपरीत थी। वे अपने समय के संस्कृत के महान विद्वान थे और संस्कृत भाषण उनकी दिनचर्या का अंग था। उन्होंने

बड़ी–बड़ी बहसों में पंडितों को परास्त कर अपनी सिद्धता साबित की थी। जनता के कल्याणार्थ उन्होंने 'वेदभाष्य' की रचना शुरू की, जिसमें भाष्य की सम्पूर्ण बारीकियाँ संस्कृत में दीं, लेकिन केवल हिन्दी जानने वाले लोगों के लिए भावार्थ हिन्दी में भी प्रस्तुत किया।

स्वामीजी ने 'भ्रान्ति निवारण' में स्पष्ट किया कि हिन्दी में शब्दार्थ इसलिए दिया गया ताकि जो लोग संस्कृत नहीं समझते, वे भी वेद का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर सकें। 'संस्कारविधि' की भूमिका में भी उन्होंने लिखा कि साधारण लोग संस्कृत के शास्त्रीय विषय नहीं समझ सकते, इसलिए उन्हें सरल और सुगम भाषा में प्रस्तुत किया गया। शास्त्रीय चर्चा और शास्त्रार्थ जैसी कुछ रचनाओं को छोड़कर उनकी अधिकांश रचनाएँ हिन्दी में ही हैं।

स्वामीजी और भाषा की शुद्धता :

– स्वामीजी के गुरु प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द व्याकरण के आदर्श गुरु थे और स्वामीजी स्वयं व्याकरण के महान पंडित थे। वेदांग प्रकाश के अनेक खण्डों में उन्होंने व्याकरण का गहन व्याख्यान दिया और शास्त्रार्थों में विरोधियों को व्याकरण संबंधी प्रश्नों से परास्त किया। इसलिए यह स्वाभाविक था कि वे भाषा में अशुद्धि सहन न कर सकें।

जब स्वामीजी ने 'सत्यार्थप्रकाश' की रचना शुरू की, तब उनका हिन्दी लेखन का अभ्यास पर्याप्त नहीं था। इसके कारण प्रारंभिक संस्करण में भाषा में कुछ अशुद्धियाँ थीं। परन्तु दूसरे संस्करण तक उन्होंने इस कमी को दूर कर दिया। उस संस्करण की भूमिका में उन्होंने लिखा कि प्रारंभ में संस्कृत भाषण करने, पठन–पाठन में संस्कृत बोलने और गुजराती मातृभाषा होने के कारण उन्हें हिन्दी का पूर्ण ज्ञान नहीं था, जिससे भाषा अशुद्ध हो गई थी। अब अभ्यास के बाद उन्होंने इसे व्याकरणानुसार शुद्ध कर पुनः छपवाया।

स्वामीजी को भाषा की अशुद्धि अत्यधिक खटकती थी। जैन मतावलंबियों को लिखे पत्र में उन्होंने लिखा कि 'आप विद्वान होकर 'मूर्ख' को 'मुर्रा' लिखते हैं और सुधारते समय कई गलतियाँ छोड़ देते हैं; संस्कृत तो दूर, देशी भाषा भी लोग नहीं जानते।' यह शिकायत उन्होंने अपने अधीनस्थ लेखकों से भी कई बार की। पं. ज्वालादत्त को लिखे पत्र में उन्होंने उदाहरण देकर बताया कि कितने पृष्ठों में कितनी अशुद्धियाँ थीं।

अंग्रेजों के उच्चारण की भी वे आलोचना करते थे। अमृतसर में व्याख्यान में उन्होंने कहा कि 'यद्यपि अंग्रेज इतने समय से यहाँ हैं, परंतु उनका उच्चारण अब तक शुद्ध नहीं हुआ; 'तकार' की जगह 'टकार', 'तुम' की जगह 'टुम' कहा जाता है। '

प्रारंभ में हिन्दी बोलने में स्वामीजी को कठिनाई हुई। संस्कृत में जो वे बोलते थे, पंडित लोग जानबूझकर उसका अर्थ बदल दिया करते थे। प्रारंभिक भाषणों और लेखों में कई शब्द और वाक्य संस्कृत के ही रहते थे। परन्तु कालांतर में उन्होंने हिन्दी पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया और उसे सरल, शुद्ध और प्रभावशाली बना दिया।

अनुवाद रुचिकर नहीं :

स्वामी दयानन्द के कई ग्रंथ विश्व की विभिन्न भाषाओं में अनूदित हो चुके थे, कुछ तो उनके जीवनकाल में ही गुजराती, मराठी, उर्दू आदि में प्रकाशित हो गए थे। फिर भी वे अपनी रचनाओं का अनुवाद स्वेच्छा से अन्य भाषाओं में करवाना पसंद नहीं करते थे। एक सज्जन ने उन्हें फारसी लिपि में छपवाने का परामर्श दिया, ताकि पंजाब आदि क्षेत्रों के लोग पढ़ सकें। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि अनुवाद केवल विदेशियों के लिए आवश्यक है; नागरी अक्षर जल्दी सीखे जा सकते हैं और आर्यभाषा सीखना कठिन कार्य नहीं है। इसी प्रकार वे अपने वेदभाष्य का भी अंग्रेज़ी में अनुवाद तब तक नहीं चाहते थे जब तक वह संस्कृत और आर्यभाषा में पूर्ण न हो।

स्वामीजी ने पत्रों में इसके कई कारण बताए। पहला, अधूरा वेदभाष्य यदि अंग्रेजी या उर्दू में अनूदित हो जाए तो संस्कृत का अध्ययन करने वाले दुर्बल हो जाएंगे और यह समझेंगे कि संस्कृत की आवश्यकता नहीं। दूसरा, एक भाषा से दूसरी में अनुवाद करना कठिन कार्य है; अनुवादक को दोनों भाषाओं पर समान अधिकार होना चाहिए। वेदभाष्य के लिए योग्य अनुवादक मिलना कठिन था। तीसरा, अनुवादक को मेरे पास रहकर गूढ़ अंश समझने होंगे; तब भी कुछ हानि अवश्य होगी, और लोग संस्कृत या हिन्दी पढ़ने से विमुख हो सकते हैं।

इसके बावजूद, आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने कुछ रचनाओं का अंग्रेज़ी में अनुवाद करने की अनुमति दी और जनहित में ऐसा करने का आदेश भी दिया। उदाहरणत: गोकरुणानिधि के अंग्रेज़ी अनुवाद के लिए उन्होंने लाला मूलराज को पत्र लिखा कि देर होने से उन्हें बम्बई में अन्य लोगों से अनुवाद कराना पड़ा। वहीं, अन्य भाषाओं से हिन्दी भाषा का भण्डार बढ़ाने के लिए उन्होंने बाइबिल और कुरान शरीफ के अंशों का हिन्दी में अनुवाद करवाया। स्वयं उन्होंने अंग्रेज़ी का अध्ययन भी प्रारम्भ किया, लेकिन व्यस्तता के कारण कार्य अधूरा रह गया।

स्वामीजी द्वारा प्रयुक्त हिन्दी प्रचार-प्रसार के साधन

(1) व्याख्यान – स्वामी दयानन्द ने राष्ट्रहित के लिए हिन्दी में व्याख्यान देने का व्रत लिया। इसके परिणामस्वरूप उनके व्याख्यानों में संस्कृत के पंडितों की संख्या तो कम हो गई, परन्तु आम जन की संख्या निरन्तर बढ़ती गई। देश के प्रत्येक भाग में उन्होंने भ्रमण कर हिन्दी का प्रचार किया और जनसाधारण को इससे परिचित

कराया। उनके व्याख्यानों ने हिन्दी को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

व्याख्यानों से संतुष्ट होकर उन्होंने अपने साहित्य का अध्ययन भी आम जनता के लिए सुगम बनाया। उनकी कई पुस्तकें प्रकाशित होते ही समाप्त हो जाती थीं। तत्कालीन साहित्य में 'सत्यार्थप्रकाश' को जो ख्याति मिली, उतनी किसी अन्य हिन्दी रचना को नहीं मिली। स्वामीजी ने कुछ शास्त्रार्थ भी हिन्दी माध्यम से किए। आश्चर्यजनक बात यह है कि जब वे अपनी जन्मभूमि गुजरात में वैदिक धर्म का प्रचार कर रहे थे, तब उन्होंने गुजराती का प्रयोग न कर हिन्दी में ही व्याख्यान दिए। सभी व्याख्यान हिन्दी में ही थे, जबकि वे संस्कृत भी बोलते थे।

(2) लेखन :- स्वामी दयानन्द का संपूर्ण साहित्य संस्कृत और आर्यभाषा में रचा गया। जैसे-जैसे उनकी ख्याति देश में बढ़ी, वैसे-वैसे उनके साहित्य की मांग भी बढ़ी, जिससे हिन्दी का व्यापक प्रचार हुआ। उनके भक्तों ने तो इससे लाभ लिया ही, उनके विरोधियों ने भी उनकी बातों का विरोध करने के लिए उनके साहित्य का गहन अध्ययन किया। कुरान, बाइबिल, जैन और बौद्ध धर्मों के ऐसे ग्रंथ, जो विभिन्न भाषाओं में होने के कारण आम जनता तक पहुँच से बाहर थे, स्वामीजी ने हिन्दी के माध्यम से खंडन-मंडन के रूप में जनता के लिए उपलब्ध कराए। धार्मिक दृष्टि से उनके विरोधी चाहे कितने भी बढ़ गए हों, इसका परिणाम यह हुआ कि जनता में हिन्दी के अध्ययन की प्रवृत्ति बढ़ी और भाषा का प्रसार हुआ।

(3) शिक्षणालय :— अपने विचारों को व्यावहारिक रूप देने के लिए स्वामी दयानन्द ने अनेक शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की। इनमें कुछ गुरुकुल, कुछ पाठशालाएँ और कुछ कन्या पाठशालाएँ थीं। इन संस्थाओं में चरित्र निर्माण, सादगी और नैतिक शिक्षा के साथ-साथ हिन्दी भाषा का अध्ययन अनिवार्य था। कई देशी रियासतों के राजाओं को उन्होंने स्वयं हिन्दी माध्यम से शिक्षा दी। पत्र व्यवहार के माध्यम से वे रियासतों के शासकों को देवनागरी भाषा सीखने के लिए प्रोत्साहित करते थे। जोधपुर के महाराज कुमार को उन्होंने यह निर्देश दिया कि उन्हें 25 वर्ष तक ब्रह्मचारी रखकर प्रथम देवनागरी भाषा और फिर संस्कृत विद्या का अध्ययन कराना चाहिए। इसी प्रकार, मैडम ब्लैक्ट्सकी और कर्नल आल्काट को भी उन्होंने आर्यभाषा सीखने की प्रेरणा दी, जो सफल रही। कर्नल आल्काट को स्वामीजी ने अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए लिखा, ''मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि तुमने नागरी भाषा का अध्ययन प्रारंभ कर दिया है।''

(4) पत्र-पत्रिका और विज्ञापन - स्वामी दयानन्द का पत्र व्यवहार अधिकांशतः हिन्दी में होता था। जो पत्र अंग्रेज़ी में आते, वे अपने सहयोगियों से हिन्दी में अनुवाद करवा लेते थे। समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं में उनके विज्ञापन भी

हिन्दी में ही प्रकाशित होते थे। आर्यसमाजी विचारधारा की कुछ पत्रिकाएँ उनके जीवनकाल में ही प्रकाशित होने लगी थीं। प्रचार के लिए छोटी–छोटी पुस्तिकाएँ भी लाखों की संख्या में छपकर वितरित की गईं। इन पत्र–पत्रिकाओं और पुस्तिकाओं के माध्यम से एक नवीन तार्किक शैली का जन्म हुआ, जिससे हिन्दू स्वयं को सशक्त समझने लगे। इसके साथ ही तत्कालीन हिन्दी गद्य में चल रहे विवादों का समाधान भी हुआ और खड़ी बोली को स्थिर और निश्चित स्वरूप मिलने लगा।

(5) अनुयायियों द्वारा प्रचार कार्य :- स्वामी दयानन्द ने अपने सभी अनुयायियों और आर्यसमाजियों के लिए हिन्दी का ज्ञान आवश्यक माना। उनकी कथाएँ, साप्ताहिक सत्संग और अन्य कार्यक्रम भी हिन्दी में आयोजित होते थे। उनके व्यक्तित्व और अनुयायियों के प्रयासों से उर्दू–प्रभावित पंजाब में भी हिन्दी का प्रचार संभव हो सका। स्वामीजी के अनुयायी जहाँ भी गए, हिन्दी अपने साथ लेकर गए और अपने व्यवहार तथा प्रचार से इसका प्रसार किया। स्वामीजी का मानना था कि देशोत्थान के लिए एक धर्म, एक भाषा और एक लिपि होना अत्यन्त आवश्यक है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से कई वर्ष पूर्व ही उन्होंने यह दृष्टि देश के सम्मुख प्रस्तुत की थी।

स्वामीजी ने देशी रियासतों के शासकों को राज्य कार्य हिन्दी में करने का परामर्श दिया और कुछ विभागों के हिन्दी नामकरण स्वयं किया। बम्बई में स्वीकृत आर्यसमाज के 28 नियमों में से पाँचवें नियम के अनुसार, प्रधान समाज में वेदोक्त धर्मानुकूल संस्कृत और आर्य भाषा में सदुपदेश हेतु पुस्तकें उपलब्ध होंगी और एक आर्यप्रकाश साप्ताहिक पत्र भी प्रकाशित किया जाएगा।

अपने ग्रंथों और प्रचार कार्य के लिए उन्होंने वैदिक यंत्रालय नामक प्रेस की स्थापना की। इसके अलावा पंजाब में उर्दू भाषा में प्रकाशित 'उर्दू प्रताप' और 'सद्धर्मप्रचारक' पत्रिकाओं ने भी हिन्दी प्रचार में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

(6) हिन्दी में राजकार्य - स्वामी दयानन्द चाहते थे कि समस्त राजकार्य आर्यभाषा हिन्दी में ही संचालित हो। उन्होंने महारानी विक्टोरिया को भेजने के लिए गोरक्षा संबंधी एक स्मरण पत्र तैयार करवाया और दूसरा स्मरण पत्र हिन्दी को समस्त राजकार्य में अपनाने हेतु तैयार किया। उन्होंने देश में इसके प्रचार और हस्ताक्षर अभियान को भी जोरों से चलाया। एक पत्र में उन्होंने लिखा कि आर्यभाषा के राजकार्य में प्रयत्न शीघ्र करें और मेमोरियल छापे भेजें। इससे स्पष्ट होता है कि हिन्दी को राजभाषा और राष्ट्र भाषा बनाने के लिए उनके हृदय में कितनी तीव्र तड़प थी। दुर्भाग्यवश, इस मेमोरेण्डम को भेजने से पूर्व ही उनका देहांत हो गया।

हिन्दी में नवीन शब्दों के लिए वे अरबी, फारसी या अंग्रेज़ी का सहारा लेना

उचित नहीं मानते थे, बल्कि संस्कृत के समृद्ध साहित्य से इसे पूरा करना चाहते थे। राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रयोग के प्रति वे इतने कट्टर थे कि पार्सलों पर पते भी अन्य भाषा में लिखे जाने की अनुमति नहीं देते थे। उन्हें यह आशंका थी कि भारत के पिछड़े क्षेत्रों में अंग्रेज़ी में लिखे पतों वाली चिट्ठियाँ सही रूप से नहीं पहुँचेंगी, जबकि देवनागरी जानने वाले आसानी से समझ सकते थे।

स्वामीजी हिन्दी प्रचार को धार्मिक कृत्यों से भी अधिक महत्त्व देते थे। एक सेठ द्वारा विशाल मंदिर बनवाने पर वे दुःखी हुए और कहा कि यदि यह धन उद्योग-धंधों या हिन्दी और संस्कृत की पाठशालाओं में लगाया जाता, तो देश की निर्धनता और अज्ञानता दूर करने में अधिक लाभ होता।

अंग्रेजी के प्रति उनकी वितृष्णा और आर्यभाषा के प्रति उनकी स्नेह शक्ति कई घटनाओं से स्पष्ट होती है। कालीप्रसन्न वकील अंग्रेज़ी में बात कर रहे थे, तो स्वामीजी ने कहा कि अपनी भाषा में बात करना उत्तम है। एक अवसर पर किसी ब्राह्मण ने उनके संस्कृत ज्ञान की परीक्षा लेने हेतु लंबे समय तक संस्कृत में बात की, तो स्वामीजी ने उसे रोकते हुए कहा कि अब आप हिन्दी में बात करें, ताकि सभी उपस्थित सज्जन भी समझ सकें।

(7) संस्कृत और आर्य भाषा में प्रथम वेदभाष्यकर्ता :- हिन्दू धर्म में वेदों को अत्यंत पूज्य और धर्मग्रंथ माना जाता रहा है, परंतु अधिकांश लोग यह नहीं जानते कि इनमें कितनी गहन और व्यापक सामग्री निहित है। वेदों में किसका भाष्य उपादेय है, यह एक अलग प्रश्न है, परन्तु तथ्य यह है कि स्वामी दयानन्द से पूर्व किसी विद्वान् ने वेदों का हिन्दी में भाष्य करने का साहस नहीं किया। स्वामीजी प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होंने सर्वप्रथम हिन्दी तथा संस्कृत दोनों भाषाओं में वेदभाष्य किया। पूर्व के सभी भाष्यकार प्रायः केवल एक वेद का ही भाष्य करते थे, जबकि स्वामीजी ने चारों वेदों का भाष्य करने की योजना बनाई। उनका विश्वास था कि जब चारों वेदों का भाष्य प्रकाशित होगा, तो संसार वेदों के प्रकाश से प्रकाशित हो उठेगा।

स्वामीजी का हिन्दी वेदभाष्य कई व्यक्तियों को हिन्दी सीखने के लिए प्रेरित करने वाला रहा और इसके माध्यम से वेदों का ज्ञान जनसाधारण तक पहुँचने लगा। उनके वेदभाष्य ने हिन्दी भाषा के प्रचार में भी महान योगदान दिया।

(8) हण्टर कमीशन से हिन्दी के प्रचलन का अनुरोध :- सन् 1882 में भारतीय विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम निर्धारित करने के लिए सरकार ने एक आयोग गठित किया, जिसका अध्यक्ष डब्ल्यू. डब्ल्यू. हण्टर था। मास्टर दयारामजी के सुझाव पर स्वामी दयानन्द ने सभी आर्यसमाजों को पत्र भेजकर कहा कि वे हण्टर कमीशन को लिखकर प्रार्थना करें कि राजकार्य और पाठशालाओं में हिन्दी को प्रचलित किया

जाए।

समाजों द्वारा भेजे गए पत्रों में यह भी उल्लेख था कि आर्य भाषा के अतिरिक्त कोई अन्य भाषा प्रारंभिक शिक्षा के लिए उपयुक्त नहीं है। स्वामीजी का यह विश्वास निराधार नहीं था, क्योंकि अन्य भाषाएँ न तो आसानी से सीखी जा सकती थीं और न ग्रहण की जा सकती थीं। विदेशी भाषा में शिक्षा देना व्ययसाध्य और श्रमसाध्य दोनों था।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि स्वामी दयानन्द हिन्दी को राष्ट्र भाषा के रूप में मानने वाले प्रथम मनीषी थे। तत्कालीन श्रृंगारी काव्य और नाटकों के बावजूद उन्होंने हिन्दी साहित्य को महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने अपने भक्तों से कहा था कि वे उस दिन का इंतजार कर रहे हैं जब कश्मीर से कन्या-कुमारी तक सभी भारतीय एक ही भाषा को समझेंगे और बोलेंगे। जिनके भीतर उनके विचारों को जानने की इच्छा होगी, वे आर्य भाषा सीखना अपना कर्तव्य समझेंगे।

आज जो खड़ी बोली गद्य का विकास हुआ है, उसका बीजारोपण स्वामीजी ने किया। उन्होंने इस राष्ट्र भाषा को 'आर्य भाषा' नाम दिया, स्वयं इसमें साहित्य रचा, अनुयायियों और जनता को इसके अध्ययन के लिए प्रेरित किया और दैनिक जीवन में इसकी प्रतिष्ठा सुनिश्चित की। उन्होंने राजाओं को भी इसके प्रयोग के लिए प्रेरित किया, विद्यालयों में इसे शिक्षा का माध्यम बनवाने हेतु मेमोरेण्डम तैयार करवाया और न्यायालय में इसका प्रवेश कराने का प्रयास किया। इन प्रयासों का प्रत्यक्ष फल यह हुआ कि अनेक लोगों ने उनके ग्रंथ, विशेषकर 'सत्यार्थप्रकाश', पढ़ने के लिए हिन्दी सीखी। असम के रामप्रसाद उपाध्याय ऐजल ने लिखा कि उन्होंने केवल 'सत्यार्थप्रकाश' पढ़ने के लिए हिन्दी और देवनागरी लिपि सीखने का प्रयास किया और सफल भी हुए।

आर्यभाषा के इस प्रचार-प्रसार से देशवासियों में एकसूत्रता आई और प्रांतीयता तथा प्रादेशिकता के प्रभाव में कमी आई। यह आश्चर्यजनक है कि जब देश में भाषावार प्रांत बन रहे थे और अंग्रेज़ी को प्रधान भाषा बनाने के प्रयास हो रहे थे, तब 1959 में विभिन्न प्रदेशों के प्रतिनिधि महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट टंकारा में एकत्र होकर अपने विचार आर्यभाषा में ही व्यक्त करने आए।

स्वामीजी ने आर्यभाषा और संस्कृत के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के अध्ययन पर रोक नहीं लगाई, लेकिन यह अपेक्षा की कि अन्य भाषाएँ तभी सीखें जब उनका सम्यक् ज्ञान प्राप्त हो। खड़ी बोली के आरंभिक युग को 'भारतेंदु युग' कहा गया, पर स्वामीजी के योगदान के बिना वह युग पूर्ण नहीं हो सकता था।

☆☆☆